Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

कवि केदारनाथ सिंह की काव्यभाषा का विश्लेषण

अनुसुइया मिश्रा'
शोधार्थी, हिन्दी,
का.सु.साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या,
उत्तर प्रदेश,भारत।

डॉ. अनुराग मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग,
का.सु.साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या,
उत्तर प्रदेश,भारत।

Article Info

Volume 3 Issue 3

Page Number : 144-151

Publication Issue :

May-June-2020

Article History

Accepted : 10 June 2020

Published : 20 June 2020

शोधसार : तीसरा सप्तक से प्रारम्भ होकर समकालीन कविता तक की अंतर्यात्रा में केदारनाथ सिंह हर पड़ाव के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उन्हें नागार्जुन के बाद हिन्दी कविता का सबसे लोकप्रिय कवि माना जाता है जो यह सिद्ध करता है कि कविता की क्लासिकी परम्परा से लेकर आधुनिकता व लोकजीवन की बहुवर्णी रंगतें उनकी कविता की संरचना के भीतर कितने गहरे तक मौजूद हैं। समाज, लोकजीवन, राजनीति, सांप्रदायिकता, संस्कृतिबोध और देशज जीवन के अनगिनत पक्ष उनकी कविताओं में उभरते हैं और एक अर्थपूर्ण उपस्थिति में बदल जाते हैं। अपने समग्र काव्य–चिन्तन में केदार जी ने भाषा को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। भाषा का सौंदर्य, उसकी बिम्बात्मकता, व्यंजनात्मक स्वभाव, स्मृतिराग और शब्दों का सधा– संतुलित प्रयोग उनके काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं के अंतर्गत आता है। वह अनुभूति और सम्प्रेषण दोनों को महत्त्व देते हैं। समकालीन हिन्दी कविता की विशेषताओं को केदार जी की कविताओं पर विचार किये बिना नहीं समझा जा सकता।

बीजशब्द : तीसरा सप्तक, नयी कविता, समकालीनता, बिम्बधर्मिता, सम्प्रेषणात्मकता, देशज व लोकजीवन।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

भाषा को भाव व विचारों के आदान–प्रदान का प्रमुख साधन कहा जाता है। किसी विचारक का कथन है कि – भाषा मानवीय विचारों और भावों का सर्वाधिक सहज–सरल एवं सशक्त माध्यम है। भाषा एक स्वतःस्फूर्त प्रतीक–योजना द्वारा विचारों, भावावेगों तथा इच्छाओं के सम्प्रेषण का एक विशुद्ध मानवीय आयासजन्य माध्यम है। काव्य–भाषा में कवि अपनी संवेदनाओं, भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए 'शब्द' में परिवर्तन कर सकता है। काव्यभाषा में एक सामान्य शब्द विशेष अर्थ का परिचायक होता है। समय के साथ काव्य–भाषा के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है।

केदारनाथ सिंह को भाषा का जादूगर कहा जाता है। उनके लिए भाषा का सवाल एक अहम सवाल है उतना ही अहम जितना कि मनुष्य। वे कहते हैं – ''भाषा का सवाल एक बड़ा सवाल है और यदि मैं कहूँ तो एक कवि के लिए वह जीवन–मरण का सवाल है। मैं भाषा को लोगों की जबान पर लाने की कोशिश करता हूँ और साथ यह भी कोशिश करता हूँ कि हिन्दी का जो अपना खास मिजाज है, उससे छेड़छाड़ न की जाए। एक चीज की ओर मेरा ध्यान बराबर रहा है कि शब्दों को उनकी जड़ों से ही लाया जाए। जड़ों से मेरा मतलब जीवन के उन स्रोतों से है, जहाँ से शब्द नया अर्थ ग्रहण करते हैं। यहाँ यह कहना जरूरी समझता हूँ कि मेरे निकट शब्द अपने आप से महत्वपूर्ण नहीं होते, बल्कि वे अपने पूरे विन्यास में रच–खपकर ही अर्थवान होते हैं। समकालीन हिन्दी कविता की भाषा में जो कई बार एक अनुवादपन की गन्ध आती है, मैं उसे अस्वास्थ्यकर मानता हूँ। यह देखकर मुझे अच्छा लगता है कि नए उभरते हुए और खासतौर से ऐसे रचनाकार जो हिन्दी के अलग–अलग क्षेत्रों से सामने आ रहे हैं, उनमें भाषा के इस खतरे के प्रति एक चुपचाप सजगता और सक्रियता दिखलाई पड़ती है।''[1]

केदार जी की कविताओं को पढ़ते समय पाठक की संवेदना सीधे कविता से जुड़ जाती है। उनमें वह अपनी ही भावानुभूति का अनुभव करता है और यही कविता की सफल सम्प्रेष्णीयता मानी जाती है। कवि के काव्य में यह विशेषता उसके भाषिक कौशल के कारण दृष्टिगत होती है वे कहते हैं – भाषा की पटरी के बिना कविता की रेलगाड़ी दौड़ ही नहीं सकती।

केदार जी की आरम्भ की कविताओं में लोक रंग की छटा के दर्शन होते हैं–

''एक दिया वहाँ
जहाँ अभी–अभी
नए चावल का गन्ध भरा पानी फैला है
एक दिया उस घर में
जहाँ नई फसलों की गन्ध छटपटाती है
एक दिया उस जंगले पर –

जिससे दूर नदी की नावें अक्सर दिख जाती हैं।''[2]

उनकी कविताओं में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग बखूबी देखने को मिलता है –

''क्या लिखा है उस सुनहले पत्र में –
जो तुम्हारी ग्रीवा बंधा है !
पर रुको तो,
भूलता हूँ मैं कि मैंने कब, कहाँ, किस सिन्धु तट पर
तुम्हें छोड़ा था
कब दिये थे पंख ये तुमको ?''[3]

यूँ तो उनकी कविताओं के शब्द साधारण से प्रतीत होते हैं परन्तु उसके आशय अत्यन्त गहरे। उनकी काव्य–भाषा अज्ञेय की काव्य–भाषा से प्रभावित है। 'नए वर्ष के प्रति' कविता का एक उदाहरण इस बात की पुष्टि करता है –

''अनछुए तट
याकि रास्तों के नए भटकाव
धूप गन्धी पंख चिड़ियों के
कि टूटे आंधियों के पाँव !
लाओगे ! क्या लाओगे !''[4]

कवि की भाषा में नई संवेदना व नई चमक दिखाई देती है। उनकी भाषा केवल अर्थ को व्यक्त नहीं करती अपितु वस्तु और स्थिति को भी प्रकट करती है। वे भाषा को नई गत्यात्मकता प्रदान करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि गत्यात्मकता परिवर्तन की साक्षी है–

''मुझे आदमी एक सड़क पार करना
हमेशा अच्छा लगता है
क्योंकि इस तरह
एक उम्मीद–सी होती है
कि दुनिया जो इस तरफ है
शायद उससे कुछ बेहतर हो
सड़क के उस तरफ।''[5]

केदार जी एक सजग कवि होने के कारण भाषा के प्रति सदैव सचेत रहते हैं। भाषा शुरू से ही उनके लिए एक खास समस्या रही है। वे कहते हैं – ''सामाजिक विकास के साथ–साथ हमने भाषा का जो ढर्रा

विकसित कर लिया है, उसकी इस कठोर, सफलताकामी और अर्थकामी संसार में अलग–अलग व्यक्ति के नितान्त अपने जीवन को समझने और समझाने की शक्ति क्षीण होती गई है। 'जिल्दाना कहाँ है' – इसी चिन्ता के वशीभूत लिखी गई अत्यन्त ही सशक्त कविता है जिसमें कवि को सपने में जिल्दाना नामक एक अनजान जगह दिखलाई पड़ती है। उसमें उसे पत्थर के बाजे पर समुद्री धुन बजाता एक परेशान कवि दिखाई देता है। वे लिखते हैं –

''मुझे मिलना ही होगा
उस दढ़ियल कवि से
जानना ही होगा उसकी भाषा का दुख
उसकी लय के झटके
उसकी चुप्पी की चीर–फाड़।''[6]

कवि को भोजपुरी से अत्यधिक लगाव था, जिसके कारण उनकी कविताओं में भोजपुरी शब्दों की भरमार है। इन शब्दों से काव्य में गीतात्मकता व कोमलता का भाव उत्पन्न होता है साथ ही देशज संवेदना की झलक भी दृष्टिगोचर होती है –

''छोटे से आँगन में
माँ ने लगाए हैं
तुलसी के बिरवे दो
पिता ने उगाया है
बरगद छतनार।''[7]

बाद के संग्रहों में धीरे–धीरे कवि की भाषा में कोमलता के स्थान पर कठोरता एवं परुषता की झलक दिखाई देने लगी। इसका कारण यथार्थता को प्रस्तुत करना था। 'रोटी' कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है –

''वह आगे बढ़ रही है
धीरे–धीरे
झपट्टा मारने को तैयार
वह आगे बढ़ रही है
उसकी गरमाहट पहुँच रही है आदमी की नींद
और विचारों तक''।[8]

केदार जी भाषा की विश्वसनीयता एवं सम्प्रेषणीयता को विशेष महत्व देते हैं। नई कविता के जन्म के साथ भावों के सम्प्रेषण की समस्या सामने आई। वे कहते हैं –''कई बार हम अपनी सारी भाषा की अर्जित क्षमता के बावजूद पाते हैं कि जो सबसे महत्वपूर्ण बात हमें कहनी थी, वहीं नहीं कह पाए। भाषा सम्बन्धी प्रयोग, संप्रेषण की प्रक्रिया का बड़ा ही जटिल स्वरूप है, यह कई बार परेशान करता है आदमी को, और मेरा ख्याल है कि यह आधुनिक मनुष्य को ज्यादा ही परेशान करता है।''[9]

कवि की कविताओं में चुप्पियाँ बहुत कुछ कहती हैं। ''वे जानते हैं कि लोग कई बार चुप हो जाते हैं जिन्हें भाषा आती है और वे चुप्पी की तह में जाना चाहते हैं। –

वे क्यों चुप–चुप हैं जिनको आती है भाषा

वह क्या है जो दिखता है धुआँ–धुआँ सा।[10]

'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ' काव्य–संग्रह में संगृहीत 'कुछ टुकड़े' कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है –

''अकेली चुप्पी
भयानक चीज है
जैसे हवा में गैंडे का
अकेला सींग
पर यदि दो लोग चुप हों
पास–पास बैठे हुए
तो उतनी देर
भाषा के गर्भ में
चुपचाप बनती रहती है
एक और भाषा''[11]

कवि की भाषा में दुरूहता व रूखेपन के लिए कोई स्थान नहीं है। भाषा में आकर्षण है जो पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती है। ''केदार जी की काव्य–भाषा उदय प्रकाश की कहानियों की भाषा की भाँति एक अजीब सम्मोहन में बांध लेती है। भाषा में प्रश्नानुकूलता तथा कथन–भंगिमा केदारनाथ सिंह की निजी और अनूठी विशेषता कही जा सकती है। भाषा का यह विलक्षण प्रयोग चमत्कार नहीं अपितु संश्लिष्ट शब्द–चित्र और भाव–लोक का निर्माण करता है। कविता प्रश्न–प्रतिप्रश्न करती हुई कौतूहल और जिज्ञासा के एक ऐसे परिदृश्य का निर्माण करती है जो पाठक की अनुभूति–जगत से सीधे जुड़ जाता है।''[12]

'अकाल में सारस' काव्य–संग्रह में काव्य–भाषा अत्यन्त संवेदनशील एवं सक्रिय दिखाई पड़ती है। इस संग्रह की पहली कविता 'मातृभाषा' है। इस कविता के माध्यम से कवि की न केवल मातृभाषा के प्रति आस्था का भाव दिखाई देता है बल्कि इस संवेदन–शून्य होते संसार में रागात्मक ऊष्मा के संचार की भावना भी दिखाई देती है। कवि अरुण कमल 'अकाल में सारस' की काव्य–भाषा के विषय में कहते हैं – ''केदारनाथ सिंह ने भाषा के अनेक स्तरों को पकड़ा है शब्दों के अनेकानेक चेहरों और रंगों को पहचाना है और अन्त में जब कवि को पाँच–छह सुन्दर शब्द घेर लेते हैं तो रक्षा के लिए आता है खून से लथपथ एक मामूली शब्द ('ठंड से नहीं मरते शब्द')। यह शब्द नयी, भिन्न प्रकार की जीवन–स्थिति का प्रतिनिधि है। नयी जीवन–स्थितियाँ नयी भाषा भी साथ लाती हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि केदार जी का यह संग्रह उन्हीं के पिछले संग्रहों के मुकाबले ज्यादा साफ और सरल है – यह अलग बात है कि सरल रेखा जैसी कोई चीज नहीं होती।''[13]

केदार जी का कहना है कि सभी वस्तुओं एवं प्राणियों की अपनी अपनी भाषाएँ होती हैं और सभी उन्हीं के अनुसार अपनी बात कहते हैं बस उन्हें सुनना आना चाहिए –

''और पत्थर के भी होंठ होते हैं
बालू के भी
राख के भी
पृथ्वी तो यहाँ से वहाँ तक
होंठ ही होंठ है।''[14]

केदार जी इस बात पर सदैव विचार करते हैं कि जिन बातों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से न हो सके, उसके लिए क्या किया जाना चाहिए। और वे ऐसी वर्णमाला की रचना करना चाहते हैं जिनसे उन भावों की अभिव्यक्ति हो सके। साथ ही वह यह भी जानना चाहते है कि वर्णमाला के अक्षरों की रचना किसने की होगी–

''किसने बनाये
वर्णमाला के अक्षर
ये काले–काले अक्षर
भूरे–भूरे अक्षर
किसने बनाये
खड़िया ने
चिड़िया के पंख ने

दीमकों ने
ब्लैक बोर्ड ने
किसने
आखिर किसने बनाये
वर्णमाला के अक्षर।''[15]

'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ' संग्रह में केदार जी की भाषा में पारदर्शिता दिखाई देती है। उनकी भाषा में कुछ भी अग्राह्य नहीं है। नागर एवं ग्रामीण इन दो संस्कृतियों की आवाजाही शब्दों के संयोजन के ताव का आख्यान, यह काव्य–भाषा का नया तेवर है। आलोचक ''नामवर सिंह ने इस संग्रह में केदार जी द्वारा प्रयुक्त शब्द 'धारोंष्ण' के बहाने यह बताया है कि वे शब्दों को मूल स्रोत से जीवंतता के साथ ग्रहण करते हैं।''[16]

काव्यभाषा के मुद्दे पर केदारनाथ सिंह खास तौर पर चौकन्ने हैं और हों भी क्यों नहीं जब कि भाषा को लेकर उनका रुख एकदम स्पष्ट हो, बकौल कवि, ''भाषा के सूत्र पकड़ने के लिए शब्द महत्वपूर्ण हो उठते हैं। कविता शब्दबद्ध है, शब्द से पहले कविता नहीं है और शब्द में जो उतरकर आता है वह जरूरी नहीं कि हमारे मनोवेग का हिस्सा हो। भाषा केवल माध्यम नहीं है और सजावट की वस्तु तो बिल्कुल नही, इसलिए पूरी प्रक्रिया में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषा बाहर यानी समाज की ओर से आती है, जिसे हम अपने साँचे में ढालने की कोशिश करते हैं। जब भाषा आती है तो बहुत कुछ लेकर आती है और जो चीज लेकर आती है उसका उस समुदाय से गहरा रिश्ता होता है जिसके द्वारा वह ली जाती है – आखिर भाषा स्मृतियों का पुंज है और विलक्षण यह है कि स्मृतियाँ पुरानी से पुरानी और एकदम ताजा भाषा में घुली–मिली होती हैं, इसलिए मुझे लगता है कि किसी रचना की प्रक्रिया की पड़ताल वस्तुतः वह जिस तरह से भाषा में ढली है, उसकी पड़ताल है।''[17]

किसी कविता की लोकप्रियता के लिए जितना भाव–पक्ष महत्वपूर्ण है उतना ही शिल्प–पक्ष। काव्य के शिल्प से तात्पर्य कविता की भाषा, बिंब, प्रतीक, छंद, अलंकार इत्यादि सभी तत्वों से है। एक श्रेष्ठ कविता में कवि इन सभी तत्वों के उचित समाहार का पूर्ण ध्यान रखता है। काव्य–शिल्प के सम्बन्ध में डॉ. प्रकाश चन्द्र भट्ट लिखते हैं –''कविता में शिल्प का विशेष महत्व होता है। कवि कविता में शब्दों के रख–रखाव, सजावट तथा वाक्य–निर्माण द्वारा जो कारीगरी करता है वही शिल्प होता है। शिल्प का संबंध पूरी तरह कला से है। भाव, अनुभूति, संवेदना, विचार आदि का शिल्पन कर कविता का शृंगार करता है। काव्य को कला और शिल्प की कसौटी पर परख कर उसकी श्रेष्ठता की जाँच की जाती है। शिल्प के माध्यम से कवि अपनी अभिव्यक्ति को प्रखर बनाता है और कविता को एक रूप देता है।''[18]

केदार जी की कविताओं में अपनी शिल्पगत विशेषता है। उनकी कविता की पहली पंक्ति में जो लम्बी पृष्ठभूमि होती है वह अन्त में भी दिखाई देती है, जो पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती है। कवि की काव्य–कला इतनी बेजोड़ है कि कविताएँ सीधे हृदय में उतर जाती हैं। उनके काव्य में भाषा, बिंब, प्रतीक, छंद, अलंकारों का जो ताल–मेल है वह केदार जी की कविताओं को अनुपम स्वरूप प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रंथ :

1. मेरे साक्षात्कार, संपादक केदारनाथ सिंह, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 166
2. अभी बिल्कुल अभी, केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 50
3. अभी बिल्कुल अभी, केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 39
4. अभी बिल्कुल अभी, केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 64
5. मिट्टी की रोशनी, (सं.) अनिल त्रिपाठी, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 70
6. मिट्टी की रोशनी, (सं.) अनिल त्रिपाठी, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 117
7. अभी बिल्कुल अभी, केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 26
8. जमीन पक रही है, केदारनाथ सिंह, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, पृ. 24
9. मेरे साक्षात्कार, संपादक केदारनाथ सिंह, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 61
10. यहाँ से देखो, केदारनाथ सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 37
11. उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ, केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 98
12. मिट्टी की रोशनी, अनिल त्रिपाठी, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 173
13. केदारनाथ सिंह और उनका समय, निरंजन सहाय, शिल्पायन पब्लिशर्स, दिल्ली, पृ. 230
14. अकाल में सारस, केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 24
15. अकाल में सारस, केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 12
16. केदारनाथ सिंह और उनका समय, निरंजन सहाय, शिल्पायन पब्लिशर्स, दिल्ली, पृ. 230
17. मेरे साक्षात्कार, संपादक केदारनाथ सिंह, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 68
18. नागार्जुन : जीवन और साहित्य, डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्ट, पृ. 113